प्राचीन भारतीय इतिहास में सती–प्रथा का उद्भव तथा विकास

SUSHIL KUMAR
Master History
Motilal Nehru School of
Sports Rai, Sonipat.

सारांश

भारत में सती प्रथा का प्रचलन प्राचीन काल से ही विद्यमान रहा है। यह एक ऐसी अमानवीय कुप्रथा थी, जिसके अन्तर्गत किसी पुरुष की मृत्योपरान्त उसकी विधवा हुई पत्नी को उसके अंतिम संस्कार के समय उसकी जलती हुई चिता में प्रविष्ट होकर आत्मदाह करना होता था। क्षत्रीय समाज में इस व्यवस्था का प्रचलन अत्यधिक था। पति की मृत्यु के बाद स्त्री उसकी चिता के साथ आत्मदाह कर वह अपनी आन्तरिक पति–भक्ति व सम्पूर्ण समर्पण भाव को प्रदर्शित करती थी।

अपने इस शोध–पत्र में हम भारत में प्रचलित सती प्रथा जैसी कुप्रथा पर नज़र डालेंगें।

मुख्य शब्द : *सामाजिक, अस्तित्व, पति–भक्ति, पारलौकिक, आत्मदाह, जन–जागरण*

प्रस्तावना

प्रागैतिहासिक युग के लोगों में यह विश्वास प्रचलित था कि मृत्यु के बाद भी मनुष्य का अस्तित्व बना रहता है तथा उसे इस लोक में काम आने वाली वस्तुओं की मृत्यु के बाद भी आवश्यकता पड़ती है। इसी विश्वास के कारण लोग मृतकों के साथ–साथ उसकी पसंदीदा दैनिक उपयोग की वस्तुओं को भी दफनाते थे। किसी राजा अथवा कुलीन व्यक्ति के मरने पर समझा जाता था कि उसके साथ उससे संबंधित सभी वस्तुओं तथा पत्नी, नौकर, अश्व आदि को भी दफनाया जाए, ताकि वे उसे पारलौकिक जगत् में सुख प्रदान कर सकें। इसी विश्वास ने सती–प्रथा की उत्पत्ति में अहम योगदान दिया। जिसके अन्तर्गत मृतक के साथ उसकी पत्नी को भी जलाया जाने लगा। विश्व की अनेक प्राचीन जातियों में यह प्रथा प्रचलित थी।

ऐसा प्रतीत होता है कि भारत में आगमन से पूर्व आर्यों में इस प्रथा का प्रचलन था। भारत में प्रवेश करते समय तक यह प्रथा उनमें भी समाप्त हो चुकी थी। अवेस्ता अथवा ऋग्वेद में इसका उल्लेख नहीं मिलता। अथर्ववेद से पता चलता है कि इस प्रकार पुरातन सती–प्रथा की औपचारिकता पूरी करने के लिए पत्नी पति के साथ चिता पर लेटती तो थी लेकिन उसके सगे–संबंधी उसे चिता से उठने का आग्रह करते थे। इस अवसर पर यह प्रार्थना की जाती थी कि स्त्री अपनु पुत्रों एवं धन का उपयोग करते हुए समृद्धि का जीवन व्यतीत कर सके।

इन उल्लेखों से स्पष्ट होता है कि वैदिक समाज में सती–प्रथा प्रचलित नहीं थी तथा विधवा विवाह द्वारा स्त्री पुनः अपना घर बसाती थी।[1]

ब्राह्मण साहित्य तथा गृहासूत्रों में भी इस प्रथा का उल्लेख नहीं मिलता। बौद्ध साहित्य भी इससे अनभिज्ञ लगता है। मेगनस्थीज तथा कौटिल्य दोनों ही इसका उल्लेख नहीं करते। धर्मसूत्रों तथा प्रारम्भिक स्मृतियों से भी सती–प्रथा के प्रचलित होने का संकेत नहीं मिलता है।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि चतुर्थ ईसा पूर्व तक सती प्रथा का प्रचलन भारतीय समाज में नहीं था।[2]

भारतीय समाज में सती प्रथा का प्रचलन चतुर्थ शती ईसा पूर्व के बाद किसी समय हुआ होगा। रामायण में मूल अंश में इसका उल्लेख नहीं है, किन्तु उत्तरकाण्ड में वेदवती की माता के सती होने का उल्लेख है, जो सम्भवतः प्रक्षेपक है। दशरथ अथवा रावण की पत्नियाँ उनके मरने के बाद सती होती हुयी दिखाई नहीं देती। महाभारत में इस प्रथा का छिट–पुट उल्लेख मिलता है। पाण्डु की मृत्यु के बाद उसकी पत्नी माद्री सती हो गयी थी। कृष्ण के पिता वासुदेव के मरने पर उनकी पत्नियों ने सतीत्व का अनुरण किया था। किन्तु इस महाकाव्य में ही कई ऐसे उदाहरण मिलते हैं जहाँ पतियों की मृत्यु के बाद भी उनकी पत्नियाँ जीवित रहीं। अभिमन्यु, घटोत्कच तथा द्रोण की पत्नियाँ सती नहीं हुई। हमें हजारों यादव–विधवाओं का भी उल्लेख मिलता है, जो अर्जुन के साथ हस्तिनापुर तक गयी थीं। किन्तु पुराणों में कुछ स्त्रियों के सती होने का उल्लेख मिलता है।[3]

इससे पता चलता है कि चतुर्थ शती ईस्वी के लगभग जब पुराणों का वर्तमान स्वरूप निर्धारित हो रहा था, सती–प्रथा समाज में आधार प्राप्त कर रही थी। स्ट्रेबो तक्षशिला की स्त्रियों एवं पंजाब की कठ जाति में सती प्रथा के प्रचलित होने का उल्लेख करता है। चतुर्थ सती ईस्वी के लगभग से यह प्रथा लोकप्रियता प्राप्त करने लगी। वात्स्यायन, भास, कालिदास तथा शुद्रक जैसे लेकखकों ने इसका उल्लेख किया है। सती–प्रथा के प्रचलन का प्रथम अभिलेखीय प्रमाण गुप्तकाल का है।[4]

510 ई. के एरण लेख से पता चलता है कि गुप्त नरेश भानुगुप्त का मित्र गोपराज हूणों के विरुद्ध लड़ता हुआ मारा गया तथा उसकी पत्नी अग्नि में जल मरी थी।[5] हर्षचरित से पता चलता है कि प्रभाकरवर्धन की पत्नी यशोमती अपने पति की मृत्यु के पूर्व ही सती हो गयी थी। राज्यश्री भी चिता बनाकर जलने जा रही थी किन्तु हर्ष ने उसे बचा लिया। नेपाल की रानी राज्यवती के भी सती होने का उल्लेख मिलता है। कुछ लेखकों तथा भाष्यकारों ने इस प्रथा का कड़ा विरोध किया। महाकवि बाणभट्ट इसका विरोध करते हुए इसे महान् मूर्खतापूर्ण कार्य बताते हैं, जिसका कोई फल नहीं होता। यह आत्म–हत्या है, जिसका अनुगमन करने वाली स्त्री नरकगामिनी होती है। इसके विपरीत एक धारणा यह भी बनती थी कि सती होकर विधवा स्त्रियाँ अपना तथा मृतक पति दोनों का कल्याण करती है। सती होकर वे किसी अन्य को कोई भी लाभ नहीं पहुंचाती।[6] मध्यकालीन टीकाकार मेधातिथि भी इसे आत्महत्या मानते हुए स्त्रियों के लिए निषिद्ध बताते हैं। देवण्णभट्ट का विचार है कि सती होना विधवा के ब्रह्मचारी रहने की अपेक्षा अधिक जघन्य होता है।

किन्तु इन विरोधों के बावजूद सती–प्रथा समाज में प्रचलित होती गयी तथा इसके समर्थन में सातवीं शती ईस्वी से लोग आगे आने लगे। आगिरस ने विधान किया कि विधवा के लिए सती होना ही एकमात्र धार्मिक विकल्प है। हारीत के अनुसार सती व्रत के द्वारा पत्नी अपने पति को जघन्य पापों से भी मुक्ति दिलाती है तथा दोनों स्वर्ग में साढ़े तीन करोड़ वर्षों तक सुखपूर्वक निवास करते हैं। इन विचारों के फलस्वरूप सातवीं से ग्यारहवीं शती तक के काल में उत्तर भारत में यह प्रथा काफी प्रचलित हो गयी।[7] कश्मीर में इसका विशेष प्रचार–प्रसार हुआ। कल्हण की राजतरंगिणी से सती प्रथा के अनेक उदाहरण मिलते हैं। राजकुलों में इसका व्यापक प्रचलन था। यहाँ तक कि शासकों की रखैलें तथा वेश्याएं तक सती होती हुई दिखाई गयी हैं।[8] कथासरित्सागर में भी सती प्रथा के अनेक दृष्टान्त मिलते हैं। दक्षिणी भारत में यह प्रथा अपेक्षाकृत कम लोकप्रिय रही।

सती प्रथा का प्रचलन प्रारम्भ से क्षत्रीय अथवा योद्ध कुलों में ही था। पद्मपुराण में स्पष्टतः इस प्रथा को ब्राह्मण परिवारों के लिए निषिद्ध बताया गया है। किन्तु दसवीं शती से हम ब्राह्मणों में भी इस प्रथा का प्रचलन पाते हैं।[9]

राजपूत काल में यह प्रथा विशेष रूप से प्रचलित थी। कई राजपूत लेखों में भी इसका उल्लेख मिलता है। इस प्रकार धीरे–धीरे यह प्रथा हिन्दू धर्म में एक मान्य प्रथा हो गयी। धार्मिक अन्ध–विश्वास एवं कट्टरता ने इस अमानवीय एवं बर्बर प्रथा को लोकप्रिय बनाया।[10] जीमूतवाहन ने दायभाग में लिखा है कि इसका उद्देश्य स्त्री को सम्पत्ति के अधिकार से वंचित करना था तथा इसी कारण उसे पति के साथ जल मरने के लिए बाध्य किया जाता था।[11]

बारहवीं शती के बाद राजपूत कुलों में सती प्रथा का प्रचलन अत्यधिक हो गया। मुगल शासक अकबर ने इसे रोकने का प्रयास किया, किन्तु उसे सफलता नहीं मिली।[12] अन्ततोगत्वा ब्रिटिश काल में 1829 ई. में लार्ड विलियम बेटिंक ने कानून बनाकर इस अमानुषिक प्रथा को बंद कर दिया।

निष्कर्ष

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि वैदिक समाज में सती–प्रथा प्रचलित नहीं थी तथा विधवा विवाह द्वारा स्त्री पुनः अपना घर बसाती थी। लेकिन बाद में स्त्री को सम्पत्ति के अधिकार से वंचित करने व उसकी संपत्ति पर कब्जा करने की नियत से उसे पति के साथ जल मरने के लिए बाध्य किया जाने लगा था। धार्मिक अन्ध–विश्वास एवं कट्टरता के कारण धीरे–धीरे यह प्रथा हिन्दू धर्म में एक मान्य प्रथा हो गयी। राजपूत काल में यह प्रथा विशेष रूप से प्रचलित थी फिर भी ब्राह्मण परिवारों के लिए निषिद्ध बताया गया है। समय–समय पर इस प्रथा को रोकने के प्रयास भी किए गए लेकिन आशातीत सफलता नहीं मिली। ब्रिटिश काल में 1829 ई. में लार्ड विलियम बेटिंक ने कानून बनाकर इस अमानुषिक प्रथा को बंद कर दिया।

संदर्भ सूची

1. डी.एन. झा, एन्सीयंट इण्डिया, एन इन्ट्रोडेक्ट्री आउट लाइन, पृ. 118
2. एन.एन. भट्टाचार्य, एंशियन्य इण्डियन, सिचुअल एण्ड दियर सोशल कोनटेन्ट, पृ. 292
3. ए.एल. बाशम, द वण्डर देट वास इण्डिया, पृ. 130
4. वासुदेव उपाध्याय, गुप्तकाल का सांस्कृतिक इतिहास, पृ. 372
5. वासुदेवशरण, हर्षचरित्र एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ. 70
6. वही, पृ. 78
7. आर.एस. शर्मा, सोशल चेन्जेज इन मेडिवल इण्डिया, पृ. 127
8. कल्हण की राजतरंगणी, अनुवादित कुंवर बहादुर कौशिक, पृ. 167
9. डी.एन. झा, एन्सीयंट इण्डिया, एन इन्ट्रोडेक्ट्री आउट लाइन, पृ. 121
10. महाराज सुजान सिंह स्मारक लेख, वि.सं. 1792/1735 ई.
11. बेवरिज, (अनु.), : अकबरनामा, भाग–3, पृ. 241